अभी कुछ करो!

सांप्रदायिक तथा एकसमूहलक्षी हिंसा विधेयक को कानूनी संहिता बनाना क्यो जरूरी है।

---तीस्ता सेतलवाड

'कम्युनॅलिजम कॉम्बॅट' शुरू करने के पाच वर्ष बाद, सन 1998 मे स्वतंत्र भारत मे सबसे प्रथम जबलपूर (1961) मे हुई सांप्रदायिक हिंसा की घटना- जो कुछ दशको के बाद पुरे तौर पर एक सामूहिक हिंसाकांड मे परावर्तित हुई, ऐसे सांप्रदायिक हिंसा के मामलो मे न्यायपालिका ने उद्घोषित किए हुए नतीजो को संभवत: प्रथम बार इकठ्ठा संशोधित संकलन करते हुए हमने यह निर्देशित किया था की ऐसे हिंसात्मक उन्माद की घटनाओ मे - जिन्होने हमे

कई जाने और संपत्ती की क्षती पहुँचाई थी - दो विशेषताएँ उभरकर सामने आती है। (**किसे दोषी ठहराए?** - कम्युनॅलिझम कॉम्बॅट - मार्च 1998).

यही दो विशेषताएँ आज भी बरकरार है।

प्रथम विशेषता यह है कि हर एक घटना के कुछ महीनो पुर्व विद्वेषपूर्ण भाषण तथा लेखन के द्वारा प्रतिगामी वर्चस्ववादी गुटोंकी तरफसे छुपे तौर पर मगर सातत्यपूर्णता से धार्मिक तथा अन्य अल्पसंख्यांक समाजों के विरूध्द चलाए गये अभियान! यघापि ऐसे अभियान भारतीय दंड संहिता (आय. पी. सी.) का उल्लंघन होते ही है, लेकिन उन्हे हेतुत: नजरअंदाज किया जाता है और किसी भी दोषी के विरूध्द दंडात्मक कार्रवाई नही की जाती है, जिससे ऐसी सांप्रदायिक हिंसा पनपने का अच्छा खासा वातावरण तथा अवकाश उपलब्ध हो जाता है। इन घटनाओंकी दूसरी विशेषत: यह है कि हमारी न्यायपालिका के कई सदस्यों ने यह पाया है, जिसे उन्होने पुलिस और प्रशासन के बडे हिस्से की कानूनी व्यवस्था को बनाए रखने की असफलता और निष्क्रियता, हेतुत: दुर्लक्ष तथा साझेदारी बताया है।

सांप्रदायिक हिंसाचार की हर एक घटना मे यह दो विशेषताएँ एक साथ पाई जाती है, चाहे वह जबलपूर (1961) हो, रांची (1967 - न्यायमुर्ती रघुवीर दयाल जाँच आयोग) हो, या अहमदाबाद (1961 - न्यायमुर्ती जगमोहन रेड्डी जाँच आयोग), भिवंडी, जलगाव और महाड (1970 - न्यायमुर्ती डी. पी. मादन जाँच आयोग), तेल्लीचेरी (1971 - न्यायमुर्ती जोसेफ विट्टायथी जाँच आयोग), हाशीमपुरा (1987) अथवा भागलपूर (1989) हो - सभी मे यह सिध्द हुआ है कि अल्पसंख्यांक समाज-गुटों को अमानुष हिंसाचार का लक्ष्य बनाया गया और उनके लिए न्याय और पुनर्वसन के दरवाजे बंद रखे गये।

दिल्ली मे 1984 मे हुए सिखोंके सामूहिक हत्याकांड का मामला लिजिए, या बम्बई के 1992-93 के सांप्रदायिक दंगो का, अथवा गुजरात 2002 का सामूहिक नरसंहार जिसमे राज्य तथा अराजकीय हिस्सेदारोने हैवानियतकी अब तक की सारी सीमाएँ पार की! सांप्रदायिक हिंसाचारो के बाद न्यायदान तथा पिडीतो को मुआवजा (क्षतीपुर्ती) देने और पुनर्वसन करने के बारे मे भारत के स्वतंत्रता के बाद के कालखंड के जो दस्तावेज अभिलेख उपलब्ध है वह बहुतही निराशाजनक है। हमारे दुर्भाग्यवश, मुस्लिम, सीख, ईसाई समाज के कई पिडीत और सांप्रदायिक हिंसाचारोसे जिवीत बचे हुए लोग आज भी उन मामलो की जाँच पडताल और सुनवाई के प्रवेशद्वार ही खडे है।

यह जो नया प्रस्तावित कानून बनाया गया है - सांप्रदायिक तथा एकसमूहलक्षी हिंसाचार प्रतिबंधक (न्यायदान और पुनर्वसन की उपलब्धता) कानून 2011 (सामान्यत: जिसे सांप्रदायिक तथा एकसमूहलक्षी - हिंसाचार विधेयक कहते है) अब संसद मे रखने के पुर्व मंत्रीगण समिती की मान्यता के लिए पडा है। पिछले छह दशको मे हमारी न्यायव्यवस्था और प्रशासन मे जो त्रुटीया पाई गई है और बहुसंख्यांक समाजघटको के तरफ झुकाव पाया जाता है उन्हे दुर करने का यह एक प्रयत्न है। जैसा की आमतौर से समझा जाता है, यह प्रस्तावित कानून कोई भी बहुसंख्यांक समाज घटकों के विरूध्द नही है। बल्कि यह कानून हर एक पिडीत के, चाहे वह बहुसंख्यांक समाज का हो या अल्पसंख्यांक समाज का - न्याय, क्षतीपुर्ती और पुनर्वसन की सक्षम व्यवस्था बनाने का पुरस्कार करता है।

यह विधेयक इसलिए बनाया गया है ताकी हमारी न्यायदान व्यवस्था मे जो त्रुटीयाँ है - जिनकी वजहसे हमारे कई समाजघटकों को सांप्रदायिक हिंसा और एकसमूहलक्षी हिंसाचार का सामना करना पडा है - जिन्हे और जो भेदनीती अपनायी जाती है उसे दूर करना जरूरी है इस बात की विधीमंडल में स्वीकृती

देना है। जब कोई नागरिक संख्या की वजह से कमजोर है और सामाजिकता से दुर्बल है तथा इन्ही वजहो से उसपर हमले किये जाते है तब हमारी प्रशासनिक संस्थाए, न्यायव्यवस्था और शांती बनाए रखनेवाली यंत्रणाएँ भेदनीती अपनाती है और अल्पसंख्यांको को न्याय, क्षतीपुर्ती और पुनर्वसन उपलब्ध नही होता है।

सांप्रदायिक तथा एकसमूहलक्षी हिंसा प्रतिबंधक कानून धार्मिक तथा भाषिक अल्पसंख्यांक समाजघटकों को भारतीय संघराज्य के हर एक राज्य मे संरक्षण देता है। यह कानून अनुसूचित जाती, जनजातीयों को एक समूहलक्षी हिंसाचारों से, सामूहिक अत्याचारो से बचाता है। भारतीय दंड संहिता में जो अपराध अंतर्भूत है उनसे हटकर प्रस्तावित कानून लैंगिक अपराधोंकी आधुनिक शब्दो मे व्याख्या करता है और जो लैंगिक अपराध मानव की अप्रतिष्ठा करते है (जैसे कि आम जगहोपर नंगा करना) ना केवल बलात्कार, बल्कि प्रस्तावित कानून - विद्वेषपूर्ण भाषण और लेखन जिन्हे भारतीय दंड संहिता की धारा 153-'अ' अनुसार दंडनीय किया गया है, ऐसे अपराधो की भी सुनिश्चित तथा आधुनिक व्याख्या करने का प्रयास है।

यह महत्वपुर्ण है कि यह प्रस्तावित कानून शासकीय सेवकोंके तरफसे कर्तव्यपालन मे की जानेवाली लापरवाही की गहरी व्याख्या करता है। कर्तव्यपालन मे कसूर करना भारतीय दंड संहिता के अनुसार अपराध तय किया हुआ है। लेकिन शासकीय सेवको की और उच्चपदस्थो की आदेशपुर्ती और जिम्मेदारी के बारे मे अवहेलना को प्रथम बार अपराधोंकी श्रेणी मे लाया गया है। प्रस्तावित कानून यह कहता है कि "जब भी सातत्यपूर्ण गैरकानूनी कार्रवाईयाँ चल रही है और यह दिखाई देता है कि ऐसी गैरकानूनी गतीविधियाँ हेतुत: चल रही है, तब उस शासकीय सेवक की, जिसपर कानून और सुव्यवस्थाकी जिम्मेदारी है, असफलता मानी जाएगी और सांप्रदायिक तथा एकसमूहलक्षी हिंसाचार रोकने की जिम्मेदारी निभाने मे हेतुत: दुर्लक्ष

किया गया है और अपने कर्तव्य पालन मे कसूर की है ऐसा माना जाएगा और उसपर दंडनीय कार्रवाई की जाएगी!" ऐसे अपराधों को निम्नतम दस साल कैद की सजा रखी है। जिससे कोई भी उच्चपदस्थ शासकीय सेवक अपने इलाके मे दिल्ली 1984, या बम्बई 1992-93 या गुजरात 2002 जैसी सांप्रदायिक दंगो की घटनाओं मे समयपर हस्तक्षेप करे और उन्हे शुरू मे ही रोकने की कार्रवाइ करे इसका प्रावधान किया गया है। इस प्रावधान से हर एक उच्चपदस्थ सेवक अपनी कर्तव्यपूर्ती की जिम्मेदारी निभाए और अगर ऐसी वारदाते हो भी जाती है तो पिडीतो के न्याय, क्षतीपूर्ती तथा पुनर्वसन के लिए सही कदम उठाए इस बात का ध्यान रखा गया है।

राज्यसत्ता का इस्तेमाल भेदनीती के आधारपर करना अथवा न्यायदान मे भेदनीती अपनाना ऐसी त्रुटीयों को दूर करने के लिए जो उपाय किये जायेंगे उन्हे हमारे संविधान मे स्पष्ट रूपसे स्वीकृती दी गई है। भारतीय संविधान की धारा 14 मे यह कहा है "किसी भी व्यक्ती को कानून के समक्ष समानता देने अथवा प्रचलित कानुनों का संरक्षण देने मे राज्य कभी भी इनकार नही करेगा। " धारा 21 ने भी जान और स्वातंत्र्य (जिसमे मालमत्ता का संरक्षण भी आता है) बरकरार रखने की जिम्मेदारी राज्य पर रखी है। हमारे संविधान की धारा 15 (1) मे यह प्रावधान है कि "कोई भी नागरीक के साथ धर्म, वंश, जाती, लिंग, जन्मस्थान या इनमेसे किसी एक की वजह से भी राज्य भेदनीती पर आधारीत व्यवहार नही करेगा। " कमजोर समाजघटकों को राज्य की तरफसे संरक्षण दिया जाना चाहिए इस बात की यह पुष्टी है।

हर एक प्रजातंत्र की वास्तु इस नीव पर खडी होती है कि बहुसंख्यांक समाजघटक अपनी देखभाल करने के लिए सक्षम होते है, लेकिन अल्पसंख्यांक घटकों को विशेष संरक्षण दिया जाना चाहिए। अब भारत का ही उदाहरण लिजीए, सांप्रदायिक हिंसाचार रोकने का अनुभव (या असफलता)! इसके साथ ही एकसमूहलक्षी हिंसाचारों की बार बार घटती

घटनाएँ लिजिए। अल्पसंख्यांक होने की वजह से धार्मिक या भाषा से अल्पसंख्यांक समाज घटक, अनुसूचित जाती जनजाती तथा आदीवासी समाजघटकोंपर हमले किये जाते है, केवल उनकी अलग पहचान की वजहसे। इस विश्लेषण मे जोड दिजीए - अनुसूचित जाती - जनजाती अत्याचार प्रतिबंधक कानून 1989 पर अमल करने के संख्यात्मक नतीजे। इन सभी को देखकर नया कानून कितना जरूरी है और केवल धर्म के आधार पर अल्पसंख्यांक ठहराए हुए समाजघटकोंको ही नही, बल्कि अन्य अल्पसंख्यांक घटकों को भी विशेष संरक्षण की कितनी आवश्यकता है इस बात का अहसास हो जाएगा।

अल्पसंख्यांक संज्ञा को केवल धर्म के आधार पर अवरूध्द करना सही नही होगा। वास्तव कुछ और है। क्योंकी कश्मीर घाटी मे कश्मीरी पंडीतो पर जो हमले होते है अथवा उत्तर भारतीय -बिहारीयोंपर महाराष्ट्रमे होते हुए हमले अथवा कर्नाटक मे तामीलीयोपर। इन घटनाओं की वजह से हमे वास्वव पता चलता है कि धर्म-पंथ के आधारपर ही केवल अल्पसंख्यांकों की व्याख्या नही की जा सकती। जनसमूह स्थलांतर करते है और जनसंख्या के उथल पुथल से भिन्न प्रदेशो की जनरचनाएँ बदल जाती है। ऐसी स्थिती मे प्रजातंत्र को अपने सभी नागरीकों के संरक्षण के लिए सही उपाय करने चाहिए । इस बदलते वास्तव को सामने रखते हुए न्यायदान, क्षतीपूर्ती तथा पुनर्वसन की सक्षम व्यवस्था बनाना जरूरी होता है।

प्रस्तावित कानून को जम्मू-काश्मिर मे लागू करना बहुतही सरल बात होगी। जम्मू-काश्मिर की विधानसभा ने एक निर्णय लेना होगा और यह निर्णय भारत के राष्ट्रपती को भेजकर प्रार्थना करनी होगी की यह कानून जम्मू-काश्मिर राज्य मे लागू किया जाए। इसके बाद भारत के राष्ट्रपती संसद को निर्देश देंगे की जम्मू और काश्मिर (उपविधी-विस्तार कानून) 1956 मे सुधार किया जाए। इस तरह यह नया कानून जम्मू - काश्मिर मे लागू होगा।

अल्पसंख्यांक समूहों को संरक्षण देने का कानून बनाने के लिए केंद्र को अधिकार पहलेसे ही दिए गए है। भारतीय संविधान की धारा 355 स्पष्ट रुपसे निर्देश देती है की "राज्यों को बाहरी आक्रमण से संरक्षण देने का तथा अंदरूनी अशांती के वक्त संरक्षण देने का कर्तव्य केंद्र सरकार निभायेगी" इसमे यह भी प्रावधान है की हर एक राज्य सरकार अपना घटनात्मक दायित्व निभा सके इसकी जिम्मेदारी भी केंद्र सरकार पर है। इस प्रावधान पर काफी बहस होती रहती है और जब प्रस्तावित कानून संसद की स्थायी समिती के सामने रखा जाएगा तब भी काफी बहस होनी है। भारतकी संघराज्यात्मक रचना के हिमायती यह वास्वविकता नजरअंदाज करते है और हिंसाचारो की शृखंला के प्रती चुप्पी साधे रहते है। ऐसी चुनींदी सामूहिक नींद बहुसंख्यांकों कि तरफ से की गई हिंसाचारोंकी घटनाओं के प्रती हमारा जो कटु अनुभव है उसे नकारती दिखाई देती है।

पिछले कई दशको मे नागरी स्वतंत्रता के रक्षक और न्यायविशेषज्ञ ऐसे समय पर कानून और शांती प्रस्थापित करने के लिए कुछ समय के लिए सैनिक प्रशासन के हाथो अधिकार सौंप देने की शिफारिश करते है। हमारे आज तक के अनुभवों को मद्देनजर रखते हुए और नागरीकों की जान-माल की रक्षा करने के राज्य सरकारो के अधिकारोंका अधिक्षेप ना करते हुए नया प्रस्तावित कानून खंड 4 मे सांप्रदायिक सदभाव, न्याय और सुधार के लिए राष्ट्रीय प्राधिकरण का निर्माण करने का उपाय सुझाता है। यह प्राधिकरण नया कानून अमलमे लाने के लिए एक माध्यम का कार्य करेगा। इस प्राधिकरण के कार्य होंगे हिंसाचारों की घटनाओं की कैफीयते तथा शासकीय सेवको के कर्तव्य कसूर की कैफीयते स्वीकृत करना तथा उनकी जाँच पडताल करना और हिंसाचारों मे तबदील होनेवाले तणावपुर्ण वातावरण का नियंत्रण करना।

राष्ट्रीय प्राधिकरण राज्य सरकार को कार्रवाइ करने के लिए बाध्य नही कर सकेगा। इस तरह संघराज्यात्मक रचना के तहत कानून और सुव्यवस्था रखने मे हस्तक्षेप नही करेगा - लेकिन ऐसे समय पर वह सुयोग्य निर्देशोंके लिए न्यायालय का दरवाजा खटखटाएगा। राज्यस्तर पर भी ऐसे प्राधिकरण होंगे जिनके कर्मचारी राष्ट्रीय प्राधिकरण जैसे ही होंगे जिनकी नियुक्तीयोंपर सत्ताधारी पक्ष का नियंत्रण नही होगा, ऐसे प्रावधान किये गये है। हिंसाचारों से पिडीत लोगों को राहत दिलाना और उनका पुनर्वसन करना यह इन प्राधिकरणों की जिम्मेदारीयाँ रहेगी।

इस नई आस्थापना का निर्माण प्रस्तावित कानून मे अंतर्भूत किये जाने से पुर्व काफी चर्चा हुई थी जिसमे कानूनी व्यावसायिक, भूतपुर्व न्यायधीश आदी शामील थे। इन महानुभावो ने यह महसूस किया की छोटे पैमाने पर लेकिन सातत्यपुर्ण तरीकेसे घटनेवाली सांप्रदायिक हिंसाचारो की घटनाओं को रोकने के लिए तथा नियंत्रण रखने के लिए कोई एक आस्थापना होनी चाहीए, नही तो राज्य सरकारे उदासीन और निष्क्रिय रह सकती है जैसा की बिहार (फोर्बसगंज, जून), राजस्थान (भरपपूर सप्टेंबर) और उत्तराखंड (रुद्रपूर - ऑक्टोबर 2011) की हाल की घटनाओं मे पाया गया है।

इस प्राधिकरण के अधिकार शिफारीशों के स्वरूप मे है और उनसे संघराज्यात्मक रचना का कतई अधिक्षेप नही होता है। वैसे ही राज्यस्तर के प्राधिकरणो का निर्माण इस तरह किया गया है कि जिलास्तर की जानकारीयाँ प्राप्त कर सके और हिंसाचारों की वारदातो को रोकने का प्रयत्न हो सके। हिंसाचारो की वारदाते घटने पर न्यायदान की प्रक्रिया सही दिशा मे चले इसपर ध्यान दे सके। इनके बावजूद राष्ट्रीय प्राधिकरण को राज्य सरकारों को बंधक स्वरूप के निर्देश देने का अधिकार नही दिया है। राज्य-सरकारो को समुचित जानकारीयाँ देने का कर्तव्य मात्र सौंपा गया है। राष्ट्रीय प्राधिकरण को केवल शिफारीशों के स्वरूप मे सलाह देने का अधिकार दिया गया है।

कोई राज्य सरकार अथवा शासकीय पदस्थ को इन सलाहो को नकारने का पुरा अधिकार है। केवल नकारने की वजह स्पष्ट रूप से लिखना अनिवार्य किया गया है।

सन 2011 की मध्यावधी से जब राष्ट्रीय सलाहकार समिती (एन.ए.सी.) ने प्रस्तावित कानून के बारे मे अभिप्राय मांगे थे, प्रस्तावित कानून के पायाभूत विशेषताओंपर अस्वस्थता जतानेवाले कई अभिप्राय प्राप्त हुअे है। इन अधिक्षेपो मे मुख्यत: पिडीत गुटों के व्याख्या के बारे मे विरोध करनेवाले अभिप्राय है। धार्मिक और भाषा से संबंधित अल्पसंख्यांक तथा अनुसूचित जाती-जनजाती इनको अल्पसंख्यांक की व्याख्या मे स्थान देना और सांप्रदायिक हिंसाचार की घटनाओंपर नियंत्रण रखनेवाले राष्ट्रीय प्राधिकरण का निर्माण इनके संबंध मे कई अभिप्राय प्राप्त हुए है। इस राष्ट्रीय प्राधिकरण के सलाह देने के अधिकार, राज्य-सरकारों से जबाब हासिल करने के अधिकार और न्यायालय मे चलनेवाली सुनवाईयोंमे हस्तक्षेप आदी प्रावधानों के बारे मे शंकाए उपस्थित की गई है। साक्षकारोंको संरक्षण, सुनवाई के समय पिडीतों के अधिकार, क्षतीपूर्ती और पुनर्वसन की सक्षम व्यवस्था के बारे मे जो प्रावधान किये है उन्हे सभी ने सराहा है।

प्रस्तावित कानून मे जो पिडीत गुटोंकी व्याख्या कि गई है उसके बारे मे अधिक्षेपकर्ताओंने दो अहम बाते सामने रखी है। इनमे से एक आवाज यह कहती है की प्रस्तावित कानून मे दी गई परिभाषा से समाज अल्पसंख्यांक और बहुसंख्यांक, ऐसे दो हिस्सो मे बँट जाएगा। दूसरी आवाज अधिक नुकिली है जो यह सवाल उठाती है की इसतरह का कानून जो यह समझता है कि अल्पसंख्यांक गुट कतई हिंसाचार नही करते, क्या सही और न्याय्य है? यह आवाज सुनकर आश्चर्य नही होता क्योंकी इसी तरह का अधिक्षेप सर्व प्रथम अरूण जेटली ने एक लेख में किया था। अरूण जेटली राज्यसभा मे विरोधी दल के नेता है और जेष्ठ वकील भी। जेटली के अधिक्षेप को ही

दोहराने वाले और भी लोग है। लेकिन एक अलग आवाज उठी है - वह है तामिलनाडू की मुख्यमंत्री श्रीमती जयललिता की। वह इस कानून को जी जान से विरोध कर रही है। बाकी सभी आवाजे भारत के प्रमुख विरोधी दल याने भारतीय जनता पार्टी तथा उनके समर्थको की है। इस समीक्षा मे अपनी विरोधी आवाज मिलाने वालो मे भारतीय जनता पार्टी के विचारधारा का स्त्रोत - राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ तथा उसके सहयोगी दल - विश्व हिंदू परिषद और बजरंग दल भी सामील है।

प्रस्तावित कानून के विरूध्द और भी जो अधिक्षेप आए है उनमे कुछ आक्षेप प्रादेशिक पक्ष नेताओं के है। पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री और तृणमुल काँग्रेस की प्रमुख श्रीमती ममता बॅनर्जी का अधिक्षेप प्रस्तावित कानून के तहत राष्ट्रीय प्राधिकरण तथा केंद्र सरकार की भूमिकाओ को लेकर है। उन्हे आपत्ती है की केंद्रीय प्राधिकरण राज्य सरकारोंके अधिकारोंपर आक्रमण करेगा।

पिडीत गुटोंकी व्याख्या के बारे जो चिंता जताई गई है उसके बारे मे प्रथम विचार करते है।

जनतंत्री व्यवस्थाए, जो चुनाव व प्रातिनिधीक राजकाज पर निर्भर रहती है, विविध समाज गुटोंके आवाजो को प्रतीध्वनीत करती है। फिर भी बहुसंख्यांक गुटों को जादा अहमियत देती है। यह बहुसंख्या कभी कभी धार्मिक नही होती है। यह बहुसंख्या कभी सामाजिक स्तर पर निर्भर करती है तो कभी किसी जांतीयोंपर अथवा किसी एक विचारधारा के प्रती सहानुभूती रखनेवाले लोगोकी होती है। जनतंत्री व्यवस्थाए अपनी अच्छाईयों कि चरम सीमा पर सत्ता का संतुलन बनाए रखने के लिए अल्पसंख्यांक समाज गुटोंको अवकाश और संरक्षण देती है। इसके विपरीत यह भी हो सकता है की जनतंत्री व्यवस्था केवल कुछ समूहोंकी सत्ता होती है - जिसे समूहसत्ताक

व्यवस्था कहा जा सकता है ऐसी समूहसत्ताक व्यवस्था मे संविधानात्मक व्यवहार की मुल्य - संकल्पनाए जैसे की समता, विशेषत: कानून के समक्ष सभी की समानता, राजमार्गसे अलग पड सकती है। हम भारत के लोग भूतकाल की तरफ सजगता से देखते हुए क्या यह स्वीकार करेंगे की हम समूहसत्तावाद के शिकार हो चुके है? चुनावों को हम इस तरह अहमियत देते है कि हमारा जनतंत्र एक जिंदा, प्रवाही और सुचारू व्यवस्था है। लेकिन हम यह भी महसूस करते है कि हर एक नागरीक का मत देने का अधिकार इस तरह से तोड-मरोड कर रख दिया जाता है और इसी चुनावी तंत्र का इस्तेमाल करते हुए बहुसंख्यांक समाजसमूह अपनी सत्ता को मान्यता प्राप्त करता है।

जनतांत्रिक चुनावो की प्रक्रिया को हम पिछले कई अनुभवों के आधार पर देखते है तो बहुसंख्यांक अल्पसंख्यांक संकल्पनाए, जो हमे अखरती है, इस व्यवस्था की कठोर समीक्षा करने के लिए बाध्य करती है। भारतीय जनतंत्र मे चुनावी प्रक्रिया के साथ साथ सामूहिक अपराध भी पनपते है। हमारी चुनावी प्रक्रिया हमे 'सभी को न्याय' और 'किसी के साथ भेदनीती नही' ऐसे मूल्यों को प्रचारने के लिए उत्साहित नही करती है।

हमारे इतिहास के कुछ क्षण याद करे। नवंम्बर 1984, केवल 72 घंटो मे दिल्ली के करीब 3000 सिख्खों को ठंडे दिमागसे मौत के घाट उतारा गया। इसके बाद जनवरी मे जब संसद का सत्र बुलाया गया तो इस नरसंहार के प्रती शोकप्रस्ताव भी नही रखा गया। इससे भी बदतर बात यह थी की संसद के निम्न सभागृह मे एक महिने पूर्व प्राप्त चुनावी विजय को बडे गर्व के साथ मनाने वालो मे काँग्रेस के नेता एच. के. एल. भगत, जगदीश टाईटलर और ललित माकन भी थे, जिन्होंने सज्जन कुमार के साथ साथ अपना नाम भी अपराधीयोंकी सूची मे पाया था, जो सूची पीपुल्स युनियन फॉर सिवील लिबर्टीज और पीपुल्स युनियन फॉर डेमॉक्रटीक राईटस ने तैयार की हुई थी -

उनका अहवाल था **"कौन है अपराधी"** (पिडीतो ने दाखिल किये हुए शपथपत्र और साक्ष के निवेदनो मे इसी सूची मे दर्ज हुए अपराधीयों के नामों को दोहराया था)

इस घटना के बाद सत्ताईस साल बीत गये है।

जो चार राजनीतीक नेतागण 1984 की सिखोंके नरसंहार की घटना मे शामील थे, ऐसा पाया गया, फिर भी उनको कोई भी दंड नही हुआ है। इनमे से तीन नेताओं को नरसंहार के तुरंत बाद - एक महिने के बाद लिये गये चुनावो मे संसद सदस्य चुनकर भेजा गया। उन्हे चुना था उसी शहर ने जिस शहर मे उन्होने अमानुष नरसंहार को मानो राजनीतीक मान्यता दिलवाइ हो। उनको काँग्रेस दल ने पुरस्कृत भी किया ओर हिंदू बहुसंख्यांक मतदाताओ ने भरसक मतों से विजयी भी बनाया।

बहुसंख्यांक गुट ने की हुई सामूहिक हत्याकांड की इस घटना को दी गई अमानुष लोकतांत्रिक मान्यता विधीसदनमे भी दुर्लक्षित हो गई, क्या यह बात सराहनीय है?

क्या भारत के जनतंत्र मे राजनीतीक हितसंबंध और सत्ता के दाँवपेंचो से उपर उठकर अल्पसंख्यांक समाजगुटों को संरक्षण देने के लिए कोई कानून ना बनाना सही है?

इसी घटनाक्रम से जुडी हुई बम्बई की 1992-93 की घटनाएँ है जिनमे उलझे हुए लोगों को न्यायमुर्ती बी. एन. श्रीकृष्णने अपनी रिपोर्ट मे निरपराध मुस्लिमों को बाबरी मस्जिद गिरने के बाद शुरू हुई वारदातो मे हताहत करने का आरोप लगाया था। बाल ठाकरे की शिवसेना और उसके नेता 1995 मे महाराष्ट्र मे सत्तापर हावी हुए थे। शिवसेना के नेता मधुकर सरपोतदार

बंम्बई उत्तर-पश्चिम मतदार क्षेत्र से 1996 मे संसद सदस्य चुने गये और दूसरी बार 1998 मे भी संसद सदस्य चुने गये। यह जो नेता चुना गया उसका नाम श्रीकृष्ण आयोग की रिपोर्ट मे सांप्रदायिक दंगो मे लोगों को नेतृत्व देते हुए दिखाया गया था। उसी तरह गजानन किर्तीकर जो गोरेगाव बंम्बई का नेता था। माननीय न्यायमुर्ती के अहवाल मे जिन 31 नेताओं के नाम अपराधीयों की सूची मे थे उन्हे 1999 बाद मे सत्तापर आयी काँग्रेस - राष्ट्रवादी काँग्रेस गठबंधन की सरकार मे महत्वपुर्ण पदोपर पदोन्नती दी गई थी।

गुजरात के 2002 के नरसंहारने पिछले एक दशक मे 'लोकतांत्रिक' मान्यता प्राप्त की है और सामूहिक हिंसाचार को नई उँचाईयो पर पहुँचाया है। 'कन्सर्नड् सिटीझन्स ट्रायब्युनल - गुजरात 2002' ने अपनी रिपोर्ट मे मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी को राज्य-सरकार द्वारा पुरस्कृत नरसंहार का 'मुख्य लेखक तथा रचयिता' ठहराया है। मोदी दिसंबर 2002 मे सत्तापर आया और दोबारा 2007 मे भी सत्ताधारी बना। उसने और उसके राजनीतीक दलने इन चुनावी सफलतासे नरसंहार के अपराध को धो डालने की बेशर्मी से कोशीश की है। मुख्यमंत्री ओर गृहमंत्री की हैसीयत से नरेंद्र मोदी गुजरात नरसंहार के अनेक मामलो मे न्यायव्यवस्था को तोडमरोड करने के जुर्म मे अपराधी है। कई मामलो मे मुख्य अपराधी होने का आरोप भी उसपर लग सकता है। कई अपराध इतने गंभीर है की अधिकृत अभिलेख नष्ट करना, अपनी विचारधारा माननेवाले गुटो के लोगो को जिन गुटों ने हिंसाचार मे हिस्सा लिया था, सरकारी अभियुक्त नियुक्त करना आदी अपराध शामील है।

हम जिस चुनावी प्रक्रिया को जनतांत्रिक प्रक्रिया होने का दावा करते हुए सराहते है उसी प्रक्रियाने और चुनावी राजनीतीने यहा पर संविधानात्मक कारोबार का अपहरण किया। हिंसाचार के हर एक दौर के बाद न्यायप्रक्रिया

का मोडतोड चरम सीमा पर पहुँचा दिया गया। जब बहुसंख्यांकवाद संविधानात्मक कारोबार प्रक्रिया पर हावी हो जाता है तब उसे विधीमंडलोद्वारा नियंत्रित करने के लिए सांप्रदायिक तथा एकसमूहलक्षी हिंसाचार प्रतिबंधक कानून एक महत्वपुर्ण आवश्यकता बन जाता है।

तो यह स्पष्ट है कि हमारे समय की सबसे बडी चुनौती - हालांकी एक ही चुनौती नही है - यह है कि कैसे हम सभी नागरिकों की समानरूपसे रक्षा कर सकते है। हमारी न्यायपालिका बगैर किसी भेदनीति के न्यायदान करती है ऐसा हम दावा कर सकते है? हमारे देश मे सांप्रदायिक हिंसाचार हे हर एक दौर के बाद बरसो से अल्पसंख्यांक समूह हे ज्यादा लोग हताहत हुए है और उनकी संपत्ती की बडे पैमाने पर हानी हुई है इस बात को हम नकार सकते है? अल्पसंख्यांक समूहोंपर अन्याय हुआ है इस बात से हम अंजान रह सकते है? ऐसी एकसमूहलक्षी हिंसाचारों की घटनाओ में जो शामिल हुए थे वह लोग दंड के बिना छुट गये है इस वास्तवता को हम नकार सकते है?

अल्पसंख्यांक समूह एकसमूहलक्षी हिंसाचार नही करते ऐसी कोई भी विचारधारा सांप्रदायिक और एकसमूहलक्षी हिंसाचार प्रतिबंधक प्रस्तावित कानून के पिछे कतई नही है। केरला के मरड दंगो मे, मालेगाव (महाराष्ट्र) में अथवा भिवंडी (महाराष्ट्र) मे मुस्लिम लोग हिंसाचारी थे इसे नकारना असंभव है। प्रस्तावित कानून केवल विधीमंडल स्वीकृत इतनाही प्रतिबंध करता है कि जब भी ऐसी घटनाएँ घटती है, तब तब पुलीस और प्रशासन उपलब्ध कानूनो को मद्देनजर रखकर कार्रवाईयाँ करेंगे और प्रथम खबर अहवाल (एफ. आय. आर.) सही सही दर्ज करने मे हिचकिचाएँ नही। जाँच पडताल निष्पक्ष प्रकार से करे और दोषी को योग्य दंड दे। लेकिन इन मामलो मे आजतक हमारी यंत्रणाओ का आचरण विपरीत रहा है यह भी वास्तविकता रही है। हमारे देश की अपराधिक न्यायव्यवस्था देर करनेवाली और हर एक

भारतीय नागरीक के लिए नामुमकीन साबित हुई है, तब अल्पसंख्यांक समूहों के लिए तो स्थिती और भी बदतर होगी यह सुस्पष्ट और स्वयंसिध्द है।

इसीलिए प्रस्तावित कानून के प्रावधानो मे यह निश्चित किया गया है कि सुधार एवं पुनर्वसन के मामलो को छोडकर अन्य सभी मामलो मे, जिनमे पुलीस और प्रशासको से उँचे स्तर की कार्यक्षमता की अपेक्षा की जा सकती है, उन्हे इस कानून मे व्याख्यांकित किये हुए गुटों के मामलो मे सख्ती से लागू किया जाए। अच्छा, सुचारू और भेदनीती के अभाव का कारोबार होने के लिए संरक्षित गुटो मे धार्मिक तथा भाषासंबंधी अल्पसंख्यांक तथा अनुसूचित जाती - जनजातीयों का इस कानून के व्याख्यांकित गुटो मे अंतर्भाव किया गया है।

सन 2009 मे करीब 50 दलित संस्थाओने 20 साल पुराने अनुसूचित जाती - जनजाती अत्याचार प्रतिबंधक कानून 1989 के अमल का एकत्रित पुनरीक्षण किया था। इस पुनरीक्षण के दौरान यह पता चला की इस कानून को अमल मे लाने मे जो असफलता पायी जाती है उसका एक महत्वपुर्ण कारण यह भी है की शासकीय सेवकों की जिम्मेदारीयाँ निश्चित करने का अभाव इस कानून मे है। इस त्रुटी के साथ साथ यह भी स्वयंसिध्द बात है कि जाती व्यवस्था के सबसे नीचले स्तर पर अनुसूचित जातीया - जनजातीया होती है और उनकी स्थिती सबसे बदतर है। इन दो कारणो की वजहसे इन समाजगुटों को प्रस्तावित कानून मे व्याख्यांकित गुटो मे शामिल किया गया है।

अत्याचार प्रतिबंधक कानून के सिवा महिला संरक्षण तथा घरेलू हिंसा प्रतिबंधक कानून 2005 अपनी जगह पर है। इस विशेष कानून को बनाते समय भी सामाजिक वास्तवता तथा अनुभव हमारे सामने था। यह कानून जब अस्तित्वमे नही था तब तक भारतीय दंड संहिता की धारा 498 - अ ही केवल अपराधिक संहिता थी जो महिलाओ के घरेलू हिंसाचार के मामलो मे

लागू की जाती थी। इस नये कानून के विरोधी तत्व बहुत सालोसे धारा 498 'अ' को खारीज करने की माँग कर रहे थे। इस वजहसे की यह धारा कुछ मामलो मे गलत इस्तेमाल की जाती है। लेकिन वास्तवता कुछ और ही सामने आयी।

जेटली के माध्यम से भारतीय जनता पार्टीने यह दावा किया है कि सांप्रदायिक हिंसाचार सिर्फ एक 'कानून और सुव्यवस्था' का मामला है। सांप्रदायिक हिंसाचार का 'अमानुष क्रौर्य' एक अंग है जो सांप्रदायिक हिंसाचार की घटना को अंजाम देता है यह ये लोग भूल जाते है। सांप्रदायिक हिंसाचार का दूसरा 'अंग' है उसकी 'तीव्रता' और न्यायदान का अभाव तीसरा अंग होता है। इसे भी कुछ लोग नजरअंदाज करते है। ऐसे लोगो को यह सबसे बडी आपत्ती लगती है कि प्रस्तावित कानून मे यह प्रावधान है कि राष्ट्रीय प्राधिकरण के सात सदस्यो मे से चार सदस्य अल्पसंख्यांक समूह-गुटों के होंगे जो कि प्रातिनिधिक कारोबार के लिये आवश्यक भी है।

उपर बताया गया महत्वपुर्ण हिस्सा, प्रशासनिक तथा पुलीस का भेदनीती का बर्ताव जेटली की पैरहवी मे पुर्णत: दुर्लक्षित है। इस के लिए हमे आश्चर्य नही होना चाहिए। क्यो कि उनका राजनीतीक दल सामूहिक उन्मादो के बल पर ही सत्ता मे पहुँचा था। अयोध्या फैजाबाद मे 1992 की घटनाओं मे भाजपा के नेतागण (भूतपुर्व उपप्रधानमंत्री सहित) की भूमिका और गुजरात 2002 की घटनाओ मे उनकी भूमिका क्या थी इसके उदाहरण हमारे सामने है। उन्हे यह पता था की हमारी न्यायप्रक्रिया की प्रलंबितता और बहुसंख्यांक समूहों के प्रती आस्था उन्हे अपराधो से बचने का अवसर प्रदान करेगी। अपराधोसेही नही बल्कि दंडो से बचने का भी।

ज्यादा मात्रा के बौध्दिक स्तर पर सामाजिक - राजनीती के विश्लेषक आशुतोष वार्शनी की पैरहवी भी अवगुंठीत वास्तवता के आड मे छिपी हुई

दिखाई देती है। तीन दशक पूर्व की अवरूध्द वास्तवता। 1960 के तथा 1970 के दशको मे सांप्रदायिक हिंसाचार की घटनाएँ सांप्रदायिक तौर से संवेदनशील इलाको मे घटती थी। जैसे की भिवंडी, अलीगढ, अहमदाबाद इत्यादी। एक गृहतिक जो वार्शनी इस्तेमाल करता है। लेकिन सांप्रदायिक हिंसाचार और सामूहिक उन्माद की घटनाएँ आज ग्रामीण भारत मे भी और जो शहर तथा इलाके इनसे आजतक मुक्त पाये जाते थे वहाँ भी घटने लगी है। इसका मुख्य कारण यही है कि बहुसंख्यांक समूहो की सांप्रदायिकता का बडे पैमाने पर फेलाव हुआ है और भाजपा जैसे दल सत्ताग्रहण कर चुके है। इसके साथ यह भी एक वजह है कि 'धर्मनिरपेक्ष' काँग्रेस की तथा वामपंथियो की इस विचारधारा के फैलाव को चुनौती देने मे साबित हुई नाकामयाबी। बहुसंख्यांक समूहों का यह आक्रमण, अमानुष तथा गर्व से भरपूर, हमारी प्रशासन व्यवस्था पर, पुलीस यंत्रणापर तथा जनतांत्रिक कारोबार देखनेवाली संस्थाओंपर हावी हो गया है।

प्रस्तावित सांप्रदायिक तथा एकसमूहलक्षी हिंसाचार प्रतिबंधक कानून अतार्किक और भेदनीती के बर्ताव की इन खामियों को दूर करने का दावा नही करता है। बल्कि केवल इतनाही प्रयास करता है कि जो शासकीय सेवक, संविधान की धारा 14 और 21 के तहत उसपर सौंपी गई जिम्मेदारीयाँ निभाने मे - अल्पसंख्यांक समूह के नागरीक को, वह केवल अल्पसंख्यांक होने के लिए उत्पिडीत किया जाता है, उसे संरक्षण देने का संविधानात्मक दायित्व निभाने मे कुसूरवार साबित होगा तो उसके विरूध्द दंडनीय कार्रवाई की जाए।

जो लोग न्याय और सुधार के आग्रही है उन्होने इस चर्चा को सही दिशा मे ले जाने के लिए इस अभियान मे शामिल होना जरूरी है। आजतक यह प्रस्तावित कानून आक्रोशपूर्ण प्रचार से ग्रस्त हुआ है। इस प्रचार मे शामिल ऐसे लोग है जिनको अतार्किक भेदनीती और विद्वेष के अभियानोसे

राजनीतीक लाभ हुआ है और जो लोग सांप्रदायिक सामूहिक उन्मादो की लहरों पर सवार होकर सत्तास्थान तक पहुँचे है। इसमे आश्चर्य की कोई बात नही है।

इस प्रलंबित प्रस्तावित कानून के बारे मे तर्कपूर्ण और सुयोग्य विचारधारा के तहत चर्चा हो और इस प्रस्तावित कानून को संसद मे रखने के लिए मंत्रीगण के स्थायी समिती के समक्ष और बाद मे संसद मे जल्द पेश किया जाए इसके लिए प्रयत्न करने की आवश्यकता है। इस प्रस्तावित कानून मे जो भी त्रुटीयाँ रही होगी उन्हे दूर करने का यही एक मौका है। इस अभियान को हम पटरी से उतरकर गिरने न दे जिसके लिए विदेषपूर्ण वातावरण निर्माण करने और सामूहिक उन्माद की लहरों का निर्माण कर उसपर सवार होने का प्रयत्न करनेवाले तत्व आमादा हुए है।